

**THE ECONOMIC TIMES**

*Date: 03-11-17*

## **Fast-tracking pending cases against legislators a welcome step**

### **ET Editorials**

The Supreme Court's direction to the Centre to set up fast-track courts to prosecute pending cases against legislators is welcome. The apex court has given the Centre six weeks to submit a scheme of fast-track courts. The government should comply, with the Opposition cooperating. The Election Commission supports a lifetime ban in politics for those convicted of serious crime. The appeals process should be expedited, too, as every convict has the right of appeal. This could present a knotty problem, if the preferential allocation of scarce higher judiciary time to cases involving politicians is challenged on right-to-equality grounds. A fast-track court and a lifetime ban would incentivise political parties to be more discerning in their choice of candidates. A speedy judicial process would also put the brakes on registering unfounded or politically motivated cases. This should be an opportunity for the government to focus on improving the manner in which courts are staffed.

This would have a salutary effect on the entire criminal justice system. While this is an important step towards decriminalising the political system, it is not sufficient. The government in consultation with political parties must address the issue of political funding. This is central to reforming the political system. The shift in the Supreme Court's approach is heartening. Soon after assuming office in 2014, Prime Minister Narendra Modi had suggested setting up fast-track courts to deal with cases against legislators in a time-bound manner. At that time the Supreme Court had not favoured the proposal. It argued that it would be wrong to treat criminal cases against politicians as a distinct and special category. Instead, it asked the government to devise a system to fast track all cases.



**THE TIMES OF INDIA**

*Date: 03-11-17*

## **Netas on notice**

### ***Supreme Court pushes to decriminalise politics even as politicians dither***

#### **TOI Editorials**

The Supreme Court directive to the central government to constitute special courts to try criminal cases involving politicians can help sever the neta-criminal nexus. Most of the recent moves to reverse the criminalisation of politics have come from the judiciary. Recall the quashing of a provision in the Representation of the People Act which was allowing convicted lawmakers to escape disqualification. Not surprisingly, the apex court brushed aside the Centre's contention that constituting special courts and

speedy disposal of cases was the responsibility of state governments. The government has also been non-committal on the Election Commission demand for life ban on convicts from electoral politics. The apathy of the political class in curbing criminalisation makes their criticism of judicial activism sound hypocritical, even if sometimes justified. Data gleaned by NGOs like Association for Democratic Reforms from election affidavits indicate that nearly one-third of lawmakers (1,581 MPs and MLAs) face criminal cases. But a distinction must be made between serious criminal cases involving violent offences like murder, or crimes against women and corrupt practices, and those criminal cases filed against politicians for organising political protests. Conflating criminals with bona fide politicians will only vitiate the task at hand.

An ADR analysis of affidavits from successive elections also indicated that candidates facing criminal charges were twice as likely to win as those with a clean record. Fighting elections has become costlier, increasing the reliance among political parties on those with greater resources: money power and muscle power. Those with criminal antecedents often have the enviable reputation of getting work done by greasing the wheels of a slow moving government machinery. People cannot be blamed for reposing their trust in such leaders. But public interest and good governance are harmed when crime and corruption spread their tentacles into politics and vice versa. Prosecuting politicians in special courts and the threat of impending disqualification will serve as a powerful disincentive for political parties to award tickets to such characters. The enduring neta-criminal nexus calls for strong corrective action rather than persisting with the status quo. The NDA government came to power in 2014 on pervasive anti-corruption sentiment. It must respond positively to the judicial interventions or adopt legislative approaches that achieve the same end. It must also concede the Election Commission's demand to ban convicted politicians from electoral politics for life.

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-11-17

### नौसैनिक क्षमता में इजाफा जरूरी

**प्रेमवीर दास, (लेखक पूर्वी नौसेना कमान के पूर्व कमांडर इन चीफ हैं। वह राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार परिषद के सदस्य भी रह चुके हैं। लेख में प्रस्तुत विचार निजी हैं)**

**हिंद महासागर क्षेत्र हमारे सुरक्षा हितों की दृष्टि से अहम है। हिंद प्रशांत क्षेत्र में परिचालन सुविधाएं बढ़ाकर ही देश की नौसैनिक पहुंच में इजाफा और एक विश्वसनीय नौसेना स्थापित की जा सकती है। बता रहे हैं प्रेमवीर दास**

करीब चार दशक पहले अमेरिका के नेवल वार कॉलेज में मैंने अमेरिकी सेना से जुड़े लोगों के समक्ष कहा था कि हिंद महासागर में एकमात्र भारतीय चीज उसके नाम में लगा हिंद है। लोग इस बात पर हंसे लेकिन इसमें एक गंभीर बात यह छिपी है कि उन दिनों हमारे सामरिक सोच में हमारे आसपास का समुद्री क्षेत्र कितनी कम अहमियत रखता था। काफी पहले के एम पणिक्कर ने हमारे दीर्घकालीन हितों को लेकर हिंद महासागर के महत्त्व पर काफी कुछ लिखा था लेकिन अब से करीब 20 साल पहले तक हमारे देश के नेता इस क्षेत्र को देश की सुरक्षा की दृष्टि से अहम नहीं मानते थे। कई तो शायद अभी भी ऐसा नहीं मानते हों। इस श्रेणी के लोगों के लिए जमीनी सीमाएं और उनका दृश्य और अदृश्य प्रभाव ही असली चुनौती होता है। फिर चाहे वह अवैध प्रवासी हों या अवैध व्यापार, आतंकवाद या मादक पदार्थ की तस्करी। उनके लिए यही वास्तविक खतरा है। इस साधारणीकरण को चुनौती देने की आवश्यकता है। वैश्विक वाणिज्य का आधा से अधिक हिस्सा, खासतौर पर तेल और गैस का व्यापार हिंद महासागर क्षेत्र से ही संचालित होता है। इस क्षेत्र के कुछ रास्तों खासतौर पर सोमालिया से लगे रास्तों पर समुद्री डकैती बीते दिनों में चिंता का सबब रही है। यह सच है कि पहले के समय में यूरोपीय



शक्तियां, मूलरूप से ग्रेट ब्रिटेन अपने साम्राज्य की स्थापना के क्रम में व्यापारिक समुद्री मार्गों पर नियंत्रण रखता था। परंतु बाद में स्थिति बदलने लगी क्योंकि औपनिवेशिक व्यवस्था का अंत होने लगा।

ब्रिटेन का प्रभाव जल्दी ही सिमट गया और उसकी जगह अमेरिका ने ले ली। हिंद महासागर क्षेत्र में भी उसका प्रभाव स्पष्ट था। बीते 50 वर्ष में वह इकलौता ऐसा देश है जो इस क्षेत्र में प्रभावशाली समुद्री शक्ति बना हुआ है। ब्रिटिश और अमेरिकी दोनों यह समझ चुके हैं कि उन्हें समुद्र में और आसपास ऐसे ठिकाने चाहिए जहां उनकी सेनाएं स्थापित रहें और लंबे समय तक जिम्मेदारी संभाल सकें। बहरहाल, ब्रिटेन ने इस क्षेत्र में जो ठिकाने बनाए थे उनका इस्तेमाल कबका बंद हो चुका। अब अमेरिका नियंत्रित डिएगो

गार्सिया ही इस क्षेत्र का सबसे बड़ा विदेशी नौसैनिक अड्डा है। अभी दो दशक पहले तक हम अमेरिका को इस क्षेत्र में सुरक्षा मुहैया कराने वाली शक्ति के रूप में मान्यता देकर संतुष्ट थे। यानी जरूरत पड़ने पर तटीय मदद और सहायता पहुंचाना और नीतिगत लक्ष्यों की पूर्ति में मददगार बनना। चीन भी इस क्षेत्र के माध्यम से बहुत बड़े पैमाने पर ऊर्जा का आयात करता है। यही वजह है कि वह भी इस क्षेत्र में दखल चाहता है। चीन के जहाज और पनडुब्बियां इस क्षेत्र में प्रायः नजर आते हैं। हालांकि ऐसी सुविधाएं कभी किसी नौसैनिक अड्डे जैसी सुविधाएं नहीं दे सकती हैं इसलिए चीन पाकिस्तान में ग्वादर और अफ्रीका में जिबूती में अपने ठिकाने कायम करना चाह रहा है। ये दोनों ही एक बार में 10,000 लोगों को संभाल सकते हैं। सेशेल्स में ऐसा अड्डा विकसित करने की चर्चा भी चल रही है। इनमें से किसी को भी नौसैनिक अड्डा नहीं कहा जा सकता है लेकिन इनसे चीन और हिंद महासागर क्षेत्र को आधार तो मिलेगा। भारत को अपने समुद्री हितों को इसी संदर्भ में देखना चाहिए। चीन की शत्रुतापूर्ण मौजूदगी हमारे लिए बड़ा जोखिम हो सकती है। इसके अलावा जरूरत पड़ने पर हम भी चीन की आपूर्ति शृंखला को रोक सकते हैं। हमें इसके लिए क्षमता विकसित करनी चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करते हैं तो भी इस क्षेत्र की ताकत के रूप में अन्य लोग भारत को भारत को सुरक्षा प्रदाता के रूप में देखें।

अमेरिका के अलावा केवल चीन और भारत के पास हिंद महासागर क्षेत्र में ताकत है। चीन के पास समुद्री क्षेत्र के लिए मजबूत मंच हैं लेकिन गतिविधियां चलाने के लिए अब तक कोई अड्डा नहीं है। जबकि भारत के पास क्षेत्रीय मौजूदगी के साथ बुनियादी ढांचा है लेकिन संख्या नहीं। इसलिए यदि हमें क्षेत्र में चीन का मुकाबला करना है तो हमें अपनी समुद्री शक्ति बढ़ानी होगी। हमें अपनी नीति में इस क्षेत्र की समुद्री ताकतों के बीच साझा संबंधों पर जोर देना चाहिए। इनमें अमेरिका के अलावा जापान, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण में दक्षिण अफ्रीका और मोजांबिक भी शामिल हैं। उत्तरी मारग पर मॉरीशस और सेशेल्स जैसे द्वीप राष्ट्र हैं। खाड़ी देशों के अलावा श्रीलंका और मालदीव जैसे पड़ोसी देश भी हमारे सहयोगी हो सकते हैं। इन सभी स्थानों पर अड्डे नहीं कायम किए जा सकते हैं लेकिन परिचालन सुविधा की मदद से हम इस क्षेत्र में एक विश्वसनीय शक्ति बन सकते हैं।

जमीन से जुड़ा राज्य समर्थित आतंकवाद और यदाकदा सर उठाने वाले सीमा विवाद जल्दी नहीं समाप्त होने वाले लेकिन इनकी बदौलत युद्ध होने की आशंका भी बेहद कम नजर आ रही है। असली चुनौती हिंद-प्रशांत क्षेत्र में आएगी जहां हमारी समुद्री क्षमताओं और समस्याओं से निपटने की कुव्वत की असली परीक्षा होगी। यही वह क्षेत्र है जहां हमारी तुलना दो संभावित प्रतिद्वंद्वियों से होगी। बल्कि कहा जाए तो वे दोनों देश हमसे श्रेष्ठ हैं। चीन इस बात से अच्छी तरह वाकिफ है कि हम अहम ऊर्जा स्रोत लेकर आ रहे उसके जहाजों को इस क्षेत्र में रोक सकते हैं। मुंबई और विशाखापत्तनम के मौजूदा नौसैनिक अड्डों के बाद कारवार में तीसरा अड्डा विकसित होने से हमारी क्षमता और अधिक बढ़ जाएगी। इसके साथ ही हमें अंडमान और निकोबार द्वीप पर भी अपनी क्षमताओं को उन्नत बनाना चाहिए। ऐसा करके हम समूचे बंगाल की खाड़ी क्षेत्र पर नजर रख पाएंगे। हम इस क्षेत्र में अपनी ताकत बढ़ाना तो दूर उसे बरकरार भी नहीं रख पाए हैं। इन कमियों को तेजी से दूर करना होगा। खासतौर पर पनडुब्बी निर्माण के क्षेत्र में क्योंकि उनकी तादाद तेजी से गिरी है। ऐसे जहाज भी अहम हैं जो मनचाही तादाद में सेना को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचा सकें। खेद की बात है कि हमारी निर्णय प्रक्रिया बेहद धीमी है। इस वजह से भी हमारी समुद्री क्षमता प्रभावित हुई है। सभी सैन्य मंच बनने में वक्त लेते हैं। जहाज निर्माण में तो और ज्यादा समय लगता है। ऐसे में जरूरत आन पड़ी है कि इस काम को गति प्रदान की जाए।

*Date: 02-11-17*

## A bridge too many

*Employing army for non-emergency tasks — as in Mumbai — sends out troubling signals. It should be an exception*

### Editorials

In the presence of Maharashtra Chief Minister Devendra Fadnavis and Union Railway Minister Piyush Goyal, Union Defence Minister Nirmala Sitharaman announced that the army would be used for constructing three railway footbridges, including the ill-fated Elphinstone Bridge where several pedestrians lost their lives four weeks ago. It is not unusual for the army to be used for making bridges: Army engineers had made a bridge for the Sri Sri Ravi Shankar mega event at the Yamuna flood plains in 2015, and had replaced a collapsed footbridge just before the Commonwealth Games in Delhi in 2010. Army engineers also have a standing duty to construct pontoon bridges during the Kumbh Mela. The army has made bridges in inaccessible areas in Jammu and Kashmir and the North-east, after a natural calamity or a humanitarian disaster. The government has, in that sense, followed established precedent.

However, the current deployment for making a bridge in Mumbai is different in many ways. The Railways have the expertise and the resources to make the bridge, and in Mumbai, can even seek help from the private sector. Moreover, this bridge is a permanent construction, unlike the ones at the Yamuna flood plains or at the Kumbh, which are made temporarily for a particular event. As the deadline for constructing the footbridge has been set as January 31, 2018, it will not even provide any urgent relief to train passengers. Notwithstanding these, the government is within its rights to employ the military for this task and it can be reasonably presumed that it would have taken the decision after consulting senior military officials and taking their advice on board.

Employing the army for such non-emergency tasks should, however, be an exception and not the norm. The military is an instrument of last resort. Soldiers are meant to prepare and train for war during peacetime, and any involvement in non-military activities distracts them from their primary task. India has witnessed the consequences of employing the military for house construction and farming during the late-1950s and early 1960s, which led to a humiliating military defeat at the hands of the Chinese in 1962. There is another more important reason for greater discretion in calling in the army. It sends out the unfortunate impression that civilian institutions have failed and only the armed forces can provide a viable alternative. That is not a healthy sign in a liberal democracy because it potentially distorts the balance of civil-military relations, and comes in the way of civilian institutions being reformed. Hopefully, Sitharaman will treat the Elphinstone bridge episode as an exception and desist from calling in the army in a similar situation in the future.

---

# राष्ट्रीय सहारा

Date: 02-11-17

## सुधार की आस

संपादकीय



देश के जनप्रतिनिधियों के आचरण को लेकर सालों से बहस होती रही है। लेकिन हालात में आंशिक सुधार ही हो पाया है। अभी भी संसद और विधान सभाओं में दागियों की भरमार है। एडीआर की रिपोर्ट के मुताबिक 4852 सांसदों और विधायकों में से 1581 के खिलाफ आपराधिक मामले हैं। 543 लोक सभा सांसदों में से 184 यानी 34 फीसद के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। वहीं, 231 राज्य सभा सांसदों में से 44 यानी 19 फीसद पर भी कई तरह के केस दर्ज हैं। यहां तक कि 4078 विधायकों में से 1353 (33 फीसद) के खिलाफ विभिन्न आपराधिक मामले दर्ज हैं। कह सकते हैं कि लोकतंत्र खतरे में है।

आपराधिक मामलों में दोषी नेताओं के चुनाव लड़ने पर आजीवन पाबंदी की मांग से जुड़ी याचिका पर सुनवाई के बाद एक बार फिर से चुनाव सुधार और स्वच्छ और बेदाग राजनीति का मसला ज्वलंत हुआ है। दरअसल, आपराधिक मामले 20-20 साल तक चलते रहने पर सुप्रीम कोर्ट ने भारी नाराजगी जाहिर की है। कोर्ट का सख्त और कड़क रुख इसी बात से समझा जा सकता है कि उसने इस मामले पर चुनाव आयोग के ठंडे रिस्पांस पर जमकर फटकार लगाई है। यही वजह है कि अदालत ने यह जानना चाहा कि कितने नेताओं पर आपराधिक मामले लंबित हैं? नेताओं को दोषी करार देने की दर क्या है? और नेताओं के खिलाफ एक साल में ट्रायल पूरा करने संबंधी आदेश पर कितना अमल हुआ? याचिका में मांग की गई है कि लंबित केस का निपटारा एक साल के भीतर हो और इसके लिए फास्ट ट्रैक अदालत का गठन हो। सुप्रीम कोर्ट ने इससे राजी होते हुए स्पेशल कोर्ट बनाने का ऑर्डर दे दिया, जो फास्ट ट्रैक कोर्ट की तर्ज पर काम करेगा। इससे पहले भी शीर्ष अदालत ने चुनाव आयोग को इस बात पर डांट पिलाई थी कि दागियों के मामले में उसका नजरिया स्वतंत्र नहीं है। राजनीति में धनबल और बाहुबल का प्रभुत्व है। इलेक्शन कमीशन ने आपराधिक संलिप्तता में चुनाव लड़ने पर आजीवन रोक लगाने का पक्ष लिया। बात सही भी है कि जब आपराधिक मामले में दोषी ठहराए जाने पर नौकरशाह आजीवन नौकरी से बर्खास्त हो सकता है तो नेताओं पर छह साल की पाबंदी क्यों? सम्यक सुधार की दिशा में कुछ कदम बढ़ाने ही होंगे।

# जनसत्ता

**Date: 02-11-17**

## तेज सुनवाई

### संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने राजनीति को अपराधमुक्त बनाने के लिए केंद्र सरकार से फास्ट ट्रैक कोर्ट की तर्ज पर सांसदों और विधायकों के खिलाफ चल रहे मामलों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतों का गठन करने के लिए कहा है। शीर्ष न्यायालय के इस आदेश का स्वागत किया जाना चाहिए। अगर इस दिशा में कोई ठोस पहल होगी तो वह भारतीय लोकतंत्र के लिए बेहतर ही होगा। शीर्ष न्यायालय बुधवार को एक जनहित याचिका की सुनवाई कर रहा था, जिसमें सजायाफ्ता लोगों को आजीवन चुनाव से दूर रखने तथा न्यायपालिका या प्रशासनिक पदों पर उन्हें नियुक्त न करने की मांग की गई थी। न्यायालय ने 2014 से अब तक राजनेताओं के खिलाफ दर्ज किए गए आपराधिक मामलों की जानकारी भी मांगी है। न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा के खंडपीठ ने सरकार से कहा कि राजनीति को अपराधमुक्त होना चाहिए।

खंडपीठ ने कहा कि विशेष अदालतों के गठन की योजना और इस मद में खर्च होने वाली राशि के बारे में सरकार शीर्ष न्यायालय को अवगत कराए। साथ ही, खंडपीठ ने सरकार से 2014 के आम चुनाव में निर्वाचित 1581 सांसदों और विधायकों का वह विवरण भी दाखिल करने को कहा है जो उन्होंने अपने नामांकन पत्र में भरा था। खंडपीठ ने फिलहाल छह हफ्ते के भीतर सारी जानकारियां न्यायालय में जमा कराने का आदेश देते हुए याचिका की सुनवाई के लिए 13 दिसंबर की तारीख मुकर्रर की है। सुनवाई के दौरान केंद्र सरकार ने खंडपीठ को बताया कि दोषी ठहराए गए जनप्रतिनिधियों को आजीवन अयोग्य घोषित करने संबंधी चुनाव आयोग और विधि आयोग की सिफारिशों पर विचार किया जा रहा है। गौरतलब है कि भारतीय राजनीति में लंबे समय से अपराधियों का बोलबाला रहा है। तमाम मामलों में राजनेताओं को सजा भी मिली, लेकिन होता यही है कि वे ऊंची अदालत में अपील करके स्थगनादेश प्राप्त कर लेते हैं और फिर चुनाव लड़ने में कामयाब रहते हैं। इसलिए अरसे से इस पर विचार चल रहा है कि क्यों न सजायाफ्ता मुजरिमों को आजीवन चुनाव लड़ने से रोक दिया जाए। हालांकि चुनाव आयोग पहले ही केंद्र सरकार को सजायाफ्ता लोगों के लिए ताउम्र चुनाव लड़ने से वंचित रखने की सिफारिश कर चुका है। क्योंकि इससे पहले एक मामले में सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने इस मुद्दे पर स्पष्ट रुख न अपनाने पर चुनाव आयोग की खिंचाई भी की थी। इसी साल जुलाई में जब इस मामले में सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई चल रही थी तब केंद्र ने आजीवन चुनाव से वंचित करने की दलील का विरोध किया था। अब जबकि अदालत ने सख्त रुख अपनाया है तो माना जाना चाहिए कि इस दिशा में कोई सार्थक पहल हो सकेगी और भारतीय राजनीति में छाए अपराध के बादल छंट पाएंगे। कुछ बरसों से चुनाव आयोग की सख्ती के चलते बूथ कैप्चरिंग जैसी बुराइयों से तो निजात मिल गई है, लेकिन बाहुबलियों और अपराधियों का मनोबल आज भी पस्त नहीं हुआ है। चुनावों के दौरान आचार संहिता को कड़ाई से लागू करना आज भी एक कठिन कार्य है क्योंकि प्रत्याशियों द्वारा मतदाताओं को लुभाने के लिए पैसे और उपहार आदि बांटने का चलन अब भी कायम है। इस दिशा में भी काफी-कुछ सोचने की जरूरत है।